रहस्य त्रय

पञ्च-संस्कार विधि के भाग के रूप में मंत्रोपदेश (रहस्य मंत्रो के उपदेश) दिया जाता है। उसमें आचार्य द्वारा शिष्य को 3 रहस्यों का उपदेश दिया जाता है। श्री पराशर भट्ट ने 'अष्ट-श्लोकी' में पहली बार इसके गूढ़ अर्थों को लिखित रूप दिया। श्री पिल्लै लोकाचार्य स्वामी ने मुमुक्षुपड़ी में इसके अर्थों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया एवं श्री वरवर महामुनि ने अपने व्याख्यान में इसके अर्थों को सरल भाव में समझाया। स्वामी वेदांत-देशिका ने भी 'संप्रदाय-परिशुद्धि' एवं 'रहस्य-त्रय सारम्' में विस्तृत वर्णन किया है।

1) मूल मंत्र (अस्टाक्षर महामंत्र):- मूल मंत्र हमें स्वरुप ज्ञान देता है। इस दिव्य मंत्र को नारायण ऋषि ने नर ऋषि (दोनों ही भगवान के अवतार है) को बद्रिकाश्रम में उपदेश किया था। स्वामी देशिका इसे '*मंत्रानाम परमो मन्त्रः*' कहते हैं। मूल मंत्र के समान कोई भी मंत्र नहीं है। मूल मंत्र का जाप या ध्यान करने के लिये शुद्धि कि आवश्यकता है।

"ॐ नमो नारायणाय"

अष्ट-श्लोकी :

१)पहले श्लोक में ओंकार का अर्थ समझाया गया है :-

अकारार्थो विष्णुर्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
मकारार्थो जीवस्तदुपकरणम् वैष्णवमिदम्।
उकारोऽनन्यार्हं नियमयति संबन्धमनयोः
त्रयीसारस्त्र्यात्मा प्रणव इममर्थं समदिशत्॥ १ ॥

अ :- अकार का अर्थ जगत की श्रृष्टि, स्थिति एवं संहार करने वाले भगवान विष्णु हैं| (*जन्मादि यस्य यतः*)

उ:- उकार भगवान (अकार) एवं जीवात्मा (उकार) के विशेष संबंध को दर्शाता है, जो किसी अन्य संबंध के समान नहीं है| उकार यह दर्शाता है कि मकार अर्थात जीवात्मा केवल और केवल अकार

अर्थात परमात्मा भगवान विष्णु का ही दास है| उकार जीवात्मा एवं परमात्मा के मध्य संबंध स्थापित करने वाली 'जगन्माता महालक्ष्मी' को भी दर्शाता है|

म:- मकार जीवात्माओं (चेतन) को दर्शाता है| वर्णमाला में 'म' २५ वाँ अक्षर है एवं वेदांत में जीवात्मा को भी २५ वाँ तत्त्व कहा गया है (२४ अचेतन, २५ वाँ चेतन एवं २६ वाँ ईश्वर)

हमारे वैष्णव तिलक (उर्ध्व-पुन्ड्र) में भी एक उजली रेखा अकार (विष्णु) को दर्शाती है तथा दूसरी उजली रेखा मकार (जीवात्मा) को। मध्य कि लाल रेखा उकार को दर्शाती है। इस प्रकार हमारा वैष्णव तिलक ॐकार को दर्शाता है। ओंकार को वेदों का सार भी कहा जाता है (*सकल वेद सारम्*)

उभय बीच सिय सोभति कैसे, जीव ब्रह्म बिच माया जैसे।। (रामचरितमानस)

स्वामी वेदांत देशिका ओंकार का निम्नलिखित अर्थ बताते हैं:

1. अ - अनन्यार्घे शेषत्वं
2. ऊ - अनन्य शरणत्वं
3. म - अनन्य भोगत्वं

२)दूसरे श्लोक में पराशर भट्ट स्वामी 'नमः' पद का अर्थ बताते हैं

मन्त्रब्रह्मणि मध्यमेन नमसा पुंसः स्वरूपं गतिः
गम्यं शिक्षितमीक्षितेन पुरतः पश्चादपि स्थानतः।
स्वातन्त्र्यं निजरक्षणं समुचिता वृत्तिश्च नान्योचिता
तस्यैवेति हरेर्विविच्य कथितं स्वस्यापि नार्हं ततः॥ २॥

'नमः' पद जीव कि गति, उस गति का साधन एवं जीव का स्वरुप; इन त्रय विषयों को दर्शाता है। 'स्वतंत्रता', 'निजरक्षा' एवं 'भगवान के अलावा किसी अन्य से आसक्ति न रखना' ही जीवात्मा का स्वाभाव है। भगवान का शाश्वत अंश एवं शेषिभूत होते हुए भी जीवात्मा को इस परम आनंद का भान नहीं है।

(अ+उ+) म + न + म: + नारायणाय :- अर्थात 'म' (जीवात्मा) मेरा नहीं बल्कि नारायण का है। इस तरह नमः पद जीवात्मा पर लक्ष्मी-नारायण के अधिकार को सिद्ध करता है। जीवात्मा केवल दिव्य दम्पति कि सम्पति है।

नमः - न मम् (किंचित)

नमः पद जीवात्मा को 'अहंकार', 'ममकार' एवं 'कर्तृत्व बुद्धि' त्यागकर भगवान् की शारणागति को निर्देशित करता है। "मेरे पास भगवान के प्रति कैंकार्य के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।" मैं कर्म, ज्ञान एवं भक्ति से हीन हूँ और केवल भगवान ही मेरे उपाय हैं।

३) तीसरा श्लोक 'नारायणाय' शब्द के गूढ़ अर्थ की व्याख्या करता है :

नर= न + र

अर्थात जिसका कभी क्षय न हो, जो शाश्वत (नित्य) है, उसे नर कहते हैं

नार = नर का बहुवचन, नरों का समूह अर्थात जगत्

नार + अयन = नारायण (संधि)

अकारार्थायैव स्वमहमथ मह्यं न निवहाः
नराणां नित्यानामयनमिति नारायणपदम्।
यमाहास्मै कालं सकलमपि सर्वत्र सकलासु
अवस्थास्वाविः स्युः मम सहजकैङ्कर्यविधयः॥ ३॥

"मैं भगवान का हूँ अपना नहीं"; यही नमः शब्द का अर्थ है|

क) नराणाम् अयनं नारायणम् (तत्पुरुष समास)

जो समस्त जगत के आधार हैं (बहिर्व्याप्ती) एवं हर नर के अन्दर आधार स्वरुप अंतर्यामी परमात्मा हैं (अंतर्व्याप्ती), वो नारायण हैं|

ख) नारः अयनं यस्य सः नारायणं (बहुब्रीहि समास)

समस्त जगत (नारः) जिनका शरीर (अयनं) है एवं जो जगत के आत्मा हैं, वो नारायण हैं (शरीर-आत्मा भाव)।

इस प्रकार नारायण पद यह दर्शाता है कि चेतन एवं अचेतन के लिये मात्र भगवान ही परम गति हैं|

'आय' पद यह बताता है कि भगवान श्रीमन नारायण के प्रति कैंकर्य जीवात्मा का नैसर्गिक स्वभाव है| इसलिए जीवात्मा को हर काल, हर अवस्था में भगवान के नित्य कैंकर्य कि प्रार्थना करनी चाहिए|

'नमो नारायणाय' ओंकार के अर्थ का विस्तार करता है। 'अ' का विस्तार 'नारायण' पद, 'उ' का विस्तार 'नमो' पद एवं 'म' का विस्तार 'आय' पद है।

बहूनां जन्मनां अन्ते .....वासुदेवं सर्वं इति..... (भग. गीता, ७.१९)

विष्णु गायत्री के अनुसार नारायण एवं वासुदेव भगवान विष्णु के ही नाम हैं|

"ॐ नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णु प्रचोदयात्"

पाणिनि व्याकरण (अष्टाध्यायी ८.४.३) के अनुसार 'नारायण' specific nown है जबकि शिव, प्रजापति, अग्नि, रूद्र, हर, इंद्र, विष्णु आदि common noun हैं। इसलिए जब वेदों में रूद्र या अग्नि को ब्रह्म बताया गया है तो वो वास्तव में 'छग पशु न्याय' नियम के अनुसार वो रूद्र या अग्नि के अंतर्यामी भगवान नारायण को ही ब्रह्म बता रहे हैं।

नारायण परब्रह्म, तत्वं नारायण परं (नारायण सुक्तम, तैत्रिय अरण्यक, अथर्व वेद)

एको है व नारायणो आसीत, न ब्रह्मा न च शंकरः (पैन्गीरहस्य ब्रह्मण)

एको है वा नारायणो आसीत (महोपनिषद) (सृष्टी से पहले केवल नारायण थे)

नारायणात ब्रह्मा जायते, नारायणात रुद्रो जायते (नारायण उपनिषद)

४)

देहासक्तात्मबुद्धिर्यदि भवति पदं साधु विद्यात् तृतीयम्
स्वातन्त्र्यान्धो यदि स्यात् प्रथममितरशेषत्वधीश्चेत् द्वितीयम्।
आत्मत्राणोन्मुखश्चेन्नम इति च पदं बान्धवाभासलोलः
शब्दं नारायणाख्यं विषयचपलधीश्चेत् चतुर्थीं प्रपन्नः॥ ४॥

इस श्लोक में भट्टर स्वामी ने भगवान के शरणागत मुमुक्षुओं के शंका निवारण के लिये कुछ स्पस्टीकरण दिए हैं| जब भी देह और आत्मा के भेद के विषय में शंका उत्पन्न हो, मन देहात्म बुद्धि में आसक्त हो तो तृतीय अक्षर 'म' का ध्यान करना चाहिए; प्रथम अक्षर 'अ' का ध्यान करके यह ध्यान करना चाहिए कि जीवात्मा स्वयं स्वतंत्र नहीं अपितु भगवान द्वारा पोषित है| 'उ' शब्द भी यही दर्शाता है कि जीवात्मा मात्र भगवान का ही दास है| जीवात्मा शेषी है और भगवान शेषन|

जब स्वयं के रक्षण की प्रवृत्ति उत्पन्न हो तो 'नमः' पद की ओर देखना चाहिए जिसका अर्थ है मेरा नहीं अर्थात आत्मा भगवान की सम्पत्ति है| लौकिक संबंधो के प्रति मोह कि प्रबृत्ति हो तो सोचना चाहिए की ये सारे संबंध अनित्य एवं क्षणिक हैं जबकि भगवान के प्रति संबंध नित्य एवं शाश्वत है|

जब सांसारिक मोह उत्पन्न हो तो चतुर्थ अक्षर 'आय' पद को देखकर यह स्मरण करना चाहिए की भगवान के प्रति कैंकर्य ही जीवात्मा का स्वरुप है और नारायण के प्रति शरणागति करके ही सांसारिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है|

2)**द्वय *मंत्र*** :– श्रीमन्नारायण भगवान ने श्रीमहालक्ष्मीजी को विष्णु लोक में उपदेश किया।

श्रीमन् नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये।

श्रीमते नारायणाय नमः।।

द्वय महामंत्र को मंत्र रत्न के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। इसे शरणागति मंत्र भी कहते हैं। यह मूल मंत्र के अर्थ का विस्तार करता है। मूल मंत्र के विपरीत द्वय मंत्र के अनुसन्धान में देश, काल एवं नियम की जटिलता नहीं है।

नेतृत्वं नित्ययोगं समुचितगुणजातं तनुख्यापनञ्च
उपायं कर्तव्यभागं त्वथ मिथुनपरं प्राप्यमेवं प्रसिद्धम्।
स्वामित्वं प्रार्थनां च प्रबलतरविरोधिप्रहाणं दशैतान्
मन्तारं त्रायते चेत्यधिगतनिगमः षड्दोऽयं द्विखण्डः॥ ५॥

द्वय मंत्र को समझने की सरलता के लिहाज से १० भागों में बांटा गया है| पहला षट्पदी साधन (उपाय) के बारे में बताता है:

१) श्री:- (*नेतृत्वं*)

'श्री' शब्द महालक्ष्मी मैया को सूचित करता है, यह श्री सूक्तं से स्पस्ट है| हम माता महालक्ष्मी के माध्यम से भगवान नारायण की शरणागति करते हैं| वात्सल्यमयी माता (*लक्ष्मीआषः ऋषिकेषः देव्या कारुण्यरुपया*) अपने पुत्रों को उसके दोषों समेत अपनाती हैं और हमारे अनर्थों को नष्ट कर, भगवान के समक्ष हमारे शरणागति कि सिफारिश करती हैं| माता के इस गुण को 'पुरुषकारत्वं' भी कहते हैं|

श्री शब्द का निम्न ३ अर्थ बताये गए हैं:

१) श्रयते श्रीयते इति श्रियः

जो भगवान का आश्रय लेती हैं एवं जीवात्माओं को आश्रय प्रदान करती ।

२) श्रुनाती श्रावयति इति श्रियः

जो जीवात्माओं के प्रार्थनाओं को सुनती हैं एवं भगवान को सुनाती हैं (बाधा चढ़ा कर) ।

३)श्रृनाती श्रीनाति इति श्रियः

जो हमारे पापों सहित संचित कर्मों को नष्ट करके हमें निर्मल बनाती हैं एवं भगवान के करीब लाती ।

२) मन :- (*नित्ययोगं*)

भगवान श्री महालक्ष्मी देवी से अभिन्न हैं जैसे पुष्प से सुगंध, सूर्य से उसका तेज एवं हीरे से उसकी चमक| वेदांत देशिका बताते हैं कि अपने पुत्रों के हित हेतु ही माता कभी भगवान के चरणों को नहीं छोड़तीं हैं|

३) नारायण:- (*समुचितगुणजातं*)

महालक्ष्मी के संग के कारण भगवान के दिव्या कल्याण गुण उसी तरह उत्तेजित होते हैं अग्नि के संग से कपूर का भाप। स्त्रोत-रत्न में भगवान को अनंत कल्याण-गुणों की खान कहा गया है| सठकोप सूरी आलवार भगवान के निम्न ४ गुणों को प्रमुख बताते हैं:

१) वात्सल्यं:- जैसे गाय अपने बछरे को धूल में लिपटे होने के बावजूद अपने जीभ से चाटकर साफ़ करति है उसी प्रकार भगवान भी अपने शरणागतों के दोषों एवं संचित कर्मों को माफ करते हैं|
२) स्वामित्वं:- जीवात्मा पे परमात्मा का अधिकार सिद्ध है|
३) सौशिल्यम:- देश एवं कल में अनंत (सर्वव्यापी एवं अनादि) भगवान अपने करुना से भक्तों के समक्ष प्रकट होते हैं| जैसे निषादराज गूह एवं श्री राम|
४) सौलभ्यम:-

४) चरणौ :- (तनुख्यापनम)

भगवान के कमल सदृश्य दोनों चरण ही भक्तों के परम गंतव्य हैं| भक्त भगवान के दोनों चरण पकड़ के रखते हैं ताकि भगवान उनसे दूर न हों|

५) शरणं :- (उपायं)

उप आयते इति उपायम। जो लक्ष्य के नजदीक ले जाए उसे उपाय कहते हैं| जब जीवात्मा अपनी हार स्वीकार कर यह महसूस करता है अपने प्रयत्नों से वह नारायण को नहीं पा सकता और

भगवान से असहाय अवस्था में कैंकर्य की प्रार्थना करता है, उसे शरणागति कहते हैं। भगवान कि अहैतुकी कि कृपा ही एकमात्र मोक्ष का उपाय है।

६) प्रपद्ये :- (कर्तव्यभागं)

नारायण के प्रति शरणागति एवं नित्य कैंकर्य कि प्रार्थना ही जीवात्मा का प्रथम कर्तव्य है।

दूसरा पद उपेय (साध्य) के बारे में बताता है:-

१) श्रीमते:- (अत मिथनपरम प्रप्यामेवं प्रसिद्धं)

लक्ष्मी-नारायण ही सभी प्राणियों के परम भोक्ता एवं प्राप्य (लक्ष्य, पुरुषार्थ) हैं।

२) नारायण :- (स्वामित्वं)

भगवान श्रीमन नारायण का जीवात्माओं पर स्वामित्व हर शास्त्रों में निहित है। जीवात्मा परतंत्र है (भगवान के आधीन) एवं भगवान स्वतंत्र।

३) आय :- (प्रार्थनाम्)

चेतन एवं ज्ञानमय होने कारण जीवतामाओं से यह अपेक्षा कि जाती है कि वो भगवान से नित्य एवं निरंतर कैकर्य की प्रार्थना करे। अचेतन एवं ज्ञानहीन होने के कारण प्रकृति से यह अपेक्षा नहीं की जाती।

७) नमः :- प्रबलतर-विरोधिप्रहानम

नमः पद हमें यह निर्देशित करता है कि हम भगवान के कैंकर्य में विरोधी-स्वरुप का त्याग करें। अहंकार ही सबसे प्रबल विरोधी है जो जीवात्मा को भगवान से दूर करती है। भगवान श्री कृष्ण गीता में हमें निम्नलिखित त्याग करने को कहते हैं:-

१) कर्तृत्व-बुद्धि त्याग
२) ममता त्याग
३) फल त्याग
४) फल-उपयेत्व त्याग

ईशानां जगतामधीशदयितां नित्यानपायां श्रियं
संश्रित्याश्रयणोचिताखिलगुणस्याङ्घ्री हरेराश्रये।
इष्टोपायतया श्रिया च सहितायात्मेश्वरायार्थये
कर्तुं दास्यमशेषमप्रतिहतं नित्यं त्वहं निर्ममः॥ ६ ॥

इस श्लोक में श्री महालक्ष्मीजी जी के माध्यम से कैंकर्य प्राप्त करने कि प्रार्थना कि गयी है| श्री महालक्ष्मीजी जो समस्त जगत की स्वामिनी (*इशानां*) हैं और भगवान से सम्पूर्ण रूप से प्रीति करती हैं उनके माध्यम से मैं ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान का आश्रय लेता हूँ।

समझने कि दृष्टी से द्वय मंत्र को २ भागों में बांटा गया है:

१) *श्रीमन् नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये* |:- अर्थात सीता-राम ही उपाय हैं।

२) श्रीमते नारायणाय नमः || :- अर्थात सीता-राम ही उपेय हैं।

3) चरम श्लोक (भगवत-गीता का सार) – श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कुरुक्षेत्र की रणभूमि में उपदेश किया। यह मंत्र हमें उपाय-स्वरुप का ज्ञान देता है। यह मंत्र द्वय मंत्र के अर्थों का विस्तार करता है।

सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज |

अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षिष्यामी मा शुचः||

भक्ति योग में ३२ ब्रह्म-विद्या हैं जिनमे ३२वां शरणागति (प्रपत्ति) है| यह अत्यंत सुलभ एवं सरल मार्ग है। सठकोप सूरी आदि आलवारों ने एवं यमुन एवं रामानुज स्वामी ने प्रपत्ति मार्ग को अपने ग्रंथों के माध्यम से स्थापित किया। रामानुज स्वामी ने अपने 'शरणागति गद्य' में शरणागति मार्ग को स्थापित कर मायावाद दर्शन पर गहरा चोट किया। लोकाचार्य स्वामी बताते

हैं कि शरणागति मार्ग में जाति, रंग, कूल आदि का कोई भेद नहीं हैं। हर व्यक्ति शरणागति कर सकता।

धर्म शब्द को निम्न श्लोक से परिभाषित किया गया है : "*धीयते धार्यते इति धर्मः*"। हमारे द्वारा क्रियान्वित किया गया वह कर्म जो हमें परिभाषित करता है एवं हमें आधार देता है वही हमारा धर्म'। यहाँ पे 'धर्म' का अर्थ 'उपाय' है।

मत्प्राप्त्यर्थतया मयोक्तमखिलं संत्यज्य धर्मं पुनः
मामेकं मदवाप्तये शरणमित्यार्तोऽवसायं कुरु।
त्वामेवं व्यवसाययुक्तमखिलज्ञानादिपूर्णोह्यहम्
मत्प्राप्तिप्रतिबन्धकैर्विरहितं कुर्यां शुचं मा कृथाः॥ ७ ॥

मेरी प्राप्ति हेतु, मेरे कहे अनुसार अन्य सभी उपायों (कर्म योग, ज्ञान योग, भक्ति योग) का त्याग कर, केवल मेरी शरण को ही उपाय मानकर, निश्चिंत होकर दृढ विश्वासित रहो। इस दृढ विश्वास के रहने पर, मैं, अपने ज्ञान एवं कल्याण गुणों द्वारा, इस मार्ग पर उत्पन्न होने वाले सारे विरोधी तत्त्वों से तुम्हें मुक्त करूँगा एवं तुम्हें मोक्ष प्रदान करूँगा। (अनुवाद का साभार : **Sri Ramanuj darshnam e-magzine)**

यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शरणागति का अर्थ अकर्मण्यता नहीं। एक शरणागत कर्म, ज्ञान एवं भक्ति भी करता है पर उपाय के तौर पे नहीं बल्कि भगवान के मुखोल्लाष के लिये। उपाय श्रीमन नारायण की कृपा मात्र है।

निश्चित्य त्वदधीनतां मयि सदा कर्माद्युपायान् हरे
कर्तुं त्यक्तुमपि प्रपत्तुमनलं सीदामि दुःखाकुलः।
एतत् ज्ञानमुपेयुषो मम पुनस्सर्वापराधक्षयं
कर्तासीति दृढोऽस्मि ते तु चरमं वाक्यं स्मरन् सारथेः॥ ८ ॥

हे प्रभो! मैं अपने कर्मों को न उत्तम प्रकार से निभा पाने में समर्थ हूँ, न हीं उन्हें त्यागकर आपकी शुद्ध शरणागति करने में समर्थ हूँ। मैं इस शोक से दुक्खाकुल हूँ। क्योंकि आपने अपनी कृपा से मुझे यह भाव और ज्ञान प्रदान किया है तो मैं आश्वस्त हूँ कि चरम श्लोक में कहे के अनुसार ही आप मेरे अज्ञान, दोष और अन्य बाधाओं को हटाकर मेरी रक्षा करेंगे और मुझे अपनायेंगे।

१) सर्व धर्मान - अन्य सभी उपायों को

२) परित्यज्य - परि + त्यज्य - पूर्ण रूप से त्यागकर।

उदहारण: सुन्दरकाण्ड (वाल्मीकि रामायण) में हनुमान जी को ब्रह्मास्त्र से बंधकर एवं बेहोश होकर भूमि पर गिरा देख कर राक्षस-सेना हनुमान जी को जूट आदि के रस्सी से बांधने लगी। अपने आप को अपमानित देख ब्रह्मास्त्र विलुप्त हो गया। अपने सैनिकों कि मुर्खता को देखकर मेघनाद सर धूनकर पछताने लगा। एक शरणागत या मुमुक्षु को अन्य सभी उपायों से दूर रहना चाहिए (जैसे मनीता मानना, पुत्र कि कामना से यज्ञ करना इत्यादि)। एक शरणागत पूजा, कर्मकाण्ड या व्रत केवल भगवान कि प्रसन्नता (मुखोल्लाष) के लिये करते हैं, उपाय के तौर पर नहीं।

एक शरणागत को निम्न दो बातों से दूर रहना चाहिए:

१) *भगवत-भागवत अपचारम* :- भगवान एवं वैष्णवों के प्रति अपराध

२) *अन्य देवता परत्व बुद्धि* :- जिस प्रकार एक पतिव्रता स्त्री अन्य पुरुष (पति के मित्र या भाई आदि) की ओर देखती तो है पर उस नज़र से नहीं जैसे अपने पति को। उसी प्रकार अन्य देवताओं को हम भगवान के भक्त रूप में देखते हैं परब्रह्म के रूप में नहीं।

३) मामेकं - माम्+ एकम - केवल मेरी

लोकाचार्य स्वामी बताते हैं कि 'माम्' शब्द भगवान के '*सौलभ्यम*' को दर्शाता है। धूल सने घुँघराले-केश-युक्त घनश्याम सारथि बन कर भूमि पर खड़े हैं एवं अर्जुन रथ पर। भगवान मुमुक्षुओं से निवेदन करते हैं की वो सभी उपायों को त्यागकर उनके शरणागत हो जाये।

दुसरे अर्थों में 'माम्' शब्द उपाय है एवं 'एकं' शब्द फलम् (पुरुषार्थ, लक्ष्य)।

४) शरणं - उपाय

५) ब्रज -(प्रपद्ये)- मेरी ओर आओ (ब्रज की गोपिकाओं कि तरह)

६) अहम - मैं

लोकाचार्य स्वामी बताते हैं कि यहाँ 'अहम्' शब्द भगवान के '*परत्वं*' को दर्शाता है। भगवान कहते हैं कि मेरे या आचार्य के अलावा दूसरा कोई और तुम्हें मोक्ष नहीं दे सकता। 'अहम्' शब्द भगवान के 'अपार कारुण्य', 'अपार शक्ति', 'स्वातंत्रियम' आदि दिव्य कल्याण गुण को दर्शाता है।

७) त्वा- प्रपन्न, शरणागत

८) सर्व-पापेभ्यो - अनिष्ट निवृत्ति (संचित एवं प्रारब्ध कर्मों को नष्ट करना, जो लोक -बंधन का कारण है)

९)मोक्षिष्यामी - निष्ट प्राप्ति

१०) माँ शुचः - don't worry, I will take care of u